

## उत्तराखंड उच्च न्यायालय नैनीताल

22 नवंबर, 2022

माननीय श्री न्यायमूर्ति मनोज कुमार तिवारी

रिट याचिका (प्रकीर्ण सं. 2314 ऑफ 2022)

ओडिशा राज्य वित्तीय निगम।

... प्रार्थी

(प्रार्थी के वकील श्री नीरज गर्ग और श्री यशपाल सिंह)

### बनाम:

विज्ञान केमिकल इंडस्ट्रीज और अन्य।

... प्रत्यर्थागण

(श्री एस.के.जैन, वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री सिद्धार्थ जैन,  
डिक्री-धारक/प्रतिवादी संख्या 1 के लिए अधिवक्ता)

### निर्णय

संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत यह याचिका 18.04.2022 को अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश, सीनियर डिवीजन, देहरादून द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके अन्तर्गत धारा 47 सीपीसी के अन्तर्गत याचिकाकर्ता की आपत्ति को निरस्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने सप्तम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, देहरादून के निर्णय दिनांकित 02.09.2022 को भी चुनौती दी है, जिसके अन्तर्गत आदेश दिनांकित 18.04.2022 के विरुद्ध उनके पुनरीक्षण को निरस्त कर दिया गया था।

2. तथ्य, जिन पर कोई विवाद नहीं है, इस प्रकार हैं:

वसूली के लिए वाद मेसर्स विज्ञान केमिकल इंडस्ट्रीज (प्रतिवादी संख्या

1) द्वारा प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 के विरुद्ध सिविल न्यायाधीश,

देहरादून की अदालत में 90,400/- रुपये की याचिका दायर की गई थी, जिसे 1988 के वाद संख्या 103 के रूप में पंजीकृत किया गया था। वाद में, यह तर्क दिया गया था कि वादी ने मैसर्स मनोरमा केमिकल वर्क्स लिमिटेड को हाइड्रेटेड चूने की आपूर्ति की, हालांकि, आपूर्ति किए गए सामान की कीमत का भुगतान उसे नहीं किया गया था, इसलिए, वह 90,400/- की राशि वसूल करने का हकदार है। प्रतिवादी सं० 1 ने वाद लंबित रहने के दौरान तथा राशि की प्राप्ति तक 24% प्रति वर्ष की दर से भविष्य के ब्याज का भी दावा किया।

मेसर्स मनोरमा केमिकल वर्क्स लिमिटेड (यहां प्रतिवादी संख्या 2) ने ओडिशा राज्य वित्तीय निगम (याचिकाकर्ता) से सावधि ऋण/वित्तीय सहायता ली थी और ऋण के पुनर्भुगतान में चूक की थी, इसलिए, वाद लंबित होने के दौरान, याचिकाकर्ता ने राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951 की धारा 29 के तहत शक्ति का उपयोग करके मैसर्स मनोरमा केमिकल वर्क्स लिमिटेड को अपने कब्जे में ले लिया (इसके बाद 'एसएफसी अधिनियम' के रूप में जाना जाता है।) वादी (प्रतिवादी संख्या 1) ने एक आवेदन देकर वाद में संशोधन करने की अनुमति मांगी, जिसमें उन्होंने कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता ने एसएफसी अधिनियम की धारा 29 के तहत मेसर्स मनोरमा केमिकल वर्क्स लिमिटेड का कब्जा ले लिया है, इसलिए उन्हें वाद में प्रतिवादी सं० 4 के रूप में जोड़ा जाए। यह तर्क देने के लिए भी कुछ पैराग्राफ में संशोधन /जोड़ने की अनुमति मांगी गई थी कि, एसएफसी अधिनियम की धारा 29 (5) के तहत निहित प्रावधान के मद्देनजर, याचिकाकर्ता दावा की गई राशि के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि उसने मैसर्स मनोरमा केमिकल वर्क्स लिमिटेड का कब्जा ले लिया है और उक्त औद्योगिक कंपनी पर अब प्रतिवादी संख्या 4 के माध्यम से वाद दायर किया जाना है।

आवेदन में संशोधन की अनुमति दी गई थी और याचिकाकर्ता को वाद में प्रतिवादी सं० 4 के रूप में जोड़ा गया था। याचिकाकर्ता ने लिखित बयान, यह स्वीकार करते हुए दायर किया कि ऋण के पुनः भुगतान में चूक के कारण, उसने प्रतिवादी सं० 1 की औद्योगिक संस्था पर 18.08.1987 को एस.एफ.सी. अधिनियम की धारा 29 के अन्तर्गत कब्जा कर लिया था और उसके बाद प्रतिवादी सं० 1 की औद्योगिक संस्था को श्री टी.आर.के. राव को बेच दिया। याचिकाकर्ता ने आगे तर्क दिया कि उसके और वादी के बीच अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं है, इस प्रकार प्रतिवादी सं० 1 की बकाया राशि की वसूली की मांग उठाने का हक नहीं है।

लिखित कथन में देहरादून में न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के संबंध में भी आपत्ति उठाई गई थी। विद्वान विचारण न्यायालय ने 9 विवाद्यकों/वाद बिन्दु को विखीत किया, जिन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

1. क्या वादी एक पंजीकृत फर्म है और विज्ञान प्रकाश को वादी की फर्म की ओर से मुकदमा दायर करने का अधिकार है?
2. क्या प्रतिवादी सं० 1 प्रतिवादी सं० 2 के साथ एक संयुक्त उद्यम परियोजना है या प्रतिवादी सं० 2 का मुकदमे से कोई संबंध नहीं है?
3. क्या वादी के पास प्रतिवादियों को ट्रक मालिकों को भुगतान की गई सामग्री और कैरिज चार्ज की आपूर्ति के खिलाफ 65,954.65 रुपये का बकाया है?
4. क्या वादी केंद्रीय बिक्री कर और उस पर ब्याज की बकाया राशि के रूप में 6,229.29 रुपये प्राप्त करने का हकदार है? जैसा कि पैरा संख्या 34 में कहा गया है?
5. क्या वादी ब्याज प्राप्त करने का हकदार है? यदि हां, तो किस दर पर?
6. क्या वादी नोटिस व्यय और बैंक कमीशन के लिये 82.40 रुपये के साथ 300 रुपये प्राप्त करने का हकदार है?
7. वादी किस राहत का हकदार है?

8. क्या वादी एक लघु इकाई है? यदि हां, तो इसका प्रभाव?
9. क्या प्रतिवादी सं० 4, वादी को प्रतिवादी सं० 1 के किसी भी बकाया का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है?

3. प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर वाद को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 20.08.2001 के निर्णय के अन्तर्गत आंशिक रूप से डिक्री किया गया था। निर्णय के प्रभावी अंश को नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"वादी के वाद को 1.3.198 से 23.9.1992 तक 24% प्रति वर्ष ब्याज के साथ 84,170/- रुपये (84 हजार रुपये, एक सौ सत्तर रुपये मात्र) की वसूली के लिए आंशिक रूप से आदेश दिया जाता है और 23.9.1992 से 23.9.1992 तक भुगतान की तारीख तक चक्रवृद्धि ब्याज @ 2% प्रति माह की लागत के साथ 6,229 रुपये की वसूली के लिए आंशिक रूप से खारिज कर दिया जाता है।

प्रतिवादियों को वादी को 3 महीने की अवधि के भीतर उपरोक्त राशि का भुगतान करने का आदेश दिया जा रहा है।

4. याचिकाकर्ता के विरुद्ध अधीनस्थ न्यायालय द्वारा वाद बिन्दु संख्या 9 यह अभिनिर्धारित करते हुए विनिश्चित किया कि उसने 70,00,000/- राशि प्रतिवादी सं० 1 की संपत्तियों की विक्रय से जुटाई है जिसके विरुद्ध प्रतिवादी सं० 1 की बकाया देय राशि है जो केवल 38,00,000/- बराबर थे। प्रतिवादी सं० 1 की संपत्तियों की बिक्री के माध्यम से प्राप्त अतिरिक्त धन के समायोजन के बारे में विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है, नतीजतन, याचिकाकर्ता ने ट्रस्टी की क्षमता में प्रतिवादी सं० 1 की संपत्तियों की बिक्री से प्राप्त धन को रखा है, इसलिए, वह वादी के दावे को पूरा करने के लिए बाध्य है। वाद बिन्दु संख्या 5 पर, विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष अभिलिखित किया कि वादी प्रति वर्ष @ 24% ब्याज का हकदार है, जैसा कि व्यापारिक हलकों में प्रचलित है।

5. याचिकाकर्ता ने 2001 की सिविल अपील संख्या 182 दायर करके विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को चुनौती दी। वादी (प्रतिवादी संख्या 1) ने उक्त अपील में प्रति आपत्ति दर्ज की। षष्ठम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, देहरादून ने दिनांक 08.08.2006 के निर्णय द्वारा याचिकाकर्ता की अपील को निरस्त कर दिया और वादी द्वारा दायर प्रति आपत्ति को स्वीकार कर लिया और वाद को पूरी तरह से डिक्री कर दिया।

6. याचिकाकर्ता द्वारा दायर दूसरी अपील को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 07.05.2007 के निर्णय द्वारा निरस्त कर दिया था। याचिकाकर्ता ने दूसरी अपील में दिए गए निर्णय के खिलाफ माननीय सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया और माननीय सुप्रीम कोर्ट ने 23.11.2017 के फैसले के अन्तर्गत याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को निरस्त कर दिया। इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा संशोधित विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अंतिम हो गई।

7. प्रतिवादी संख्या 1/डिक्री धारक ने एक आवेदन दायर करके डिक्री के निष्पादन की मांग की, जिसे 2018 के नियमित निष्पादन केस सं० 107 के रूप में दर्ज किया गया था। याचिकाकर्ता ने निष्पादन न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर धारा 47 के साथ धारा 151 सी.पी.सी. के अन्तर्गत आपत्ति दर्ज की, जिसे 2021 के प्रकीर्णवाद सं० 156 के रूप में दर्ज किया गया था।

डिक्री धारक ने आपत्ति का जवाब दाखिल किया। धारा 47 सी.पी.सी. के अन्तर्गत याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्ति को निष्पादन न्यायालय द्वारा दिनांक 18.04.2022 के आदेश के अन्तर्गत निरस्त कर दिया गया था।

याचिकाकर्ता ने धारा 115 सीपीसी के अन्तर्गत दायर एक पुनरीक्षण याचिका में 18.04.2022 के आदेश को चुनौती दी, जिसे 2022 के सिविल संशोधन संख्या 40 के रूप में क्रमांकित किया गया था। विद्वान सप्तम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, देहरादून ने दिनांक 02.09.2022 के निर्णय के अन्तर्गत याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को निरस्त कर दिया। इस प्रकार व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1999 में मुकदमे के लंबित रहने के दौरान विचारण न्यायालय में वादी के दावे को पूरा करने के लिए पर्याप्त बैंक गारंटी दी थी, इसलिए, याचिकाकर्ता को डिक्री राशि पर किसी भी ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है। हालांकि, रिकॉर्ड के अवलोकन से संकेत मिलता है कि वादी ने अपनी इच्छा से बैंक गारंटी प्रस्तुत नहीं की थी, लेकिन उसे विचारण न्यायालय द्वारा सुरक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 13-05-1996 के आदेश के अन्तर्गत 3,50,000/- रु की राशि जारी की गई है। याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश को आदेश 43 नियम (क्यू) सी.पी.सी. के अन्तर्गत अपील में चुनौती दी, जिसे तृतीय अपर जिला न्यायाधीश, देहरादून ने दिनांक 03.06.1999 के निर्णय के अन्तर्गत निरस्त कर दिया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 1999 के सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 33425 में विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की, जिसे माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 10.08.1999 के फैसले के अन्तर्गत निरस्त कर दिया। इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संदर्भ में

याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत सुरक्षा को आदेश 24 नियम 1 सी.पी.सी. के अन्तर्गत की गई जमा राशि के रूप में नहीं माना जा सकता है। संदर्भ के लिए आदेश 24 नियम 1 सी.पी.सी. नीचे दिया गया है:

-

*"1. दावे की संतुष्टि में प्रतिवादी द्वारा राशि जमा करना। ऋण या क्षति की वसूली के लिए किसी भी वाद में प्रतिवादी, वाद के किसी भी चरण में, न्यायालय में इतनी राशि जमा कर सकता है जितना वह दावे में पूरी तरह से संतुष्टि मानता है।"*

9. आदेश 24 नियम 1 सी.पी.सी. को पढ़ने से पता चलता है कि प्रतिवादी द्वारा दावे की संतुष्टि में राशि जमा करना स्वैच्छिक होना चाहिए न कि मजबूरी के माध्यम से। आदेश XXVIII नियम 5 सीपीसी के अन्तर्गत पारित कुर्की के आदेश के अन्तर्गत वादी द्वारा जमानत के रूप में अदालत में जमा की गई राशि/ बैंक गारंटी वादी को केवल तभी उपलब्ध होगी जब उसका मुकदमा डिक्री किया गया हो। इसलिए इस तरह की जमा राशि को आदेश 24 नियम 1 सी.पी.सी. के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता है, इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क कि याचिकाकर्ता तय की गई राशि पर ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय द्वारा आदेशित भुगतान किए जाने वाले ब्याज @ 24% प्रति वर्ष बहुत अधिक है और इस प्रकार सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 को देखते हुए अनुचित है। हालांकि, यह दलील कि दिया गया ब्याज धारा 34 सीपीसी के विपरीत है, को आपत्ति में नहीं लिया

गया था, जिसमें यह तर्क दिया गया था कि दिया गया ब्याज उच्च दर पर है।

11. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा यथा संशोधित विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को अंतिम रूप दे दिया गया है। प्रतिवादी सं० 1 ने अपने वाद पत्र में 24% प्रति वर्ष के वादकालीन ब्याज और भविष्य के ब्याज का दावा किया था।

12. विचारण न्यायालय ने ब्याज की दर के बारे में एक वाद बिन्दु विरचित किया था, जिसके लिए वादी हकदार था और इस निष्कर्ष को लौटाया था कि वह 01.03.1988 से 23.09.1992 तक प्रति वर्ष 24% ब्याज का हकदार है और उसके बाद @ 2% प्रति माह चक्रवृद्धि ब्याज की दर से। उक्त निष्कर्ष को अंतिम रूप दिया गया, इसलिए, निष्पादन न्यायालय ने न्यायानुसार ब्याज के प्रश्न पुनः

13. यह सुस्थापित है कि निष्पादन न्यायालय न तो डिक्री के पीछे जा सकता है और न ही उस पर अपील में बैठ सकता है या उसके तहत पक्षकारों के अधिकारों को खतरे में डालने वाला कोई आदेश पारित कर सकता है। *राजस्थान वित्तीय निगम बनाम मैन इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड.*, (2003) 7 एससीसी 522 के (प्रकाशित वाद) में रिपोर्ट किया गया निर्णित ऋणी ने छमाही विश्राम के साथ ब्याज की गणना के खिलाफ निष्पादन न्यायालय के समक्ष आपत्ति उठाई थी, जिसे अस्वीकार कर दिया गया था। निर्णित ऋणी द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को हालांकि उच्च न्यायालय द्वारा यह कहते हुए अनुमति दी गई थी कि डिक्री धारक अर्धवार्षिक विश्राम के



आधार पर ब्याज लेने का हकदार नहीं है। अपील में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को रद्द कर दिया और निष्पादन न्यायालय के आदेश को बहाल कर दिया। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 13 से 20 नीचे प्रस्तुत किए गए हैं:

-

**"13.** भंवरलाल भंडारी बनाम यूनिवर्सल हेवी मैकेनिकल लिफ्टिंग एंटरप्राइजेज [(1999) 1 एससीसी 558] के वाद में भी विश्वास रखा गया था। इस वाद में निर्णित ऋणी ने इस आधार पर निष्पादन न्यायालय के समक्ष डिक्री को चुनौती दी कि जिस फैसले पर डिक्री आधारित थी, वह अमान्य था। यह प्रस्तुत किया गया था कि यह निर्णय पारित होने के 4 साल बाद मध्यस्थ द्वारा न्यायालय में दायर किया गया था। इस न्यायालय ने माना कि निष्पादन न्यायालय डिक्री से परे नहीं जा सकता है। यह माना गया था कि निष्पादन न्यायालय को उसकी अवधि के अनुसार डिक्री लेनी थी और निष्पादन न्यायालय किसी भी आपत्ति पर विचार नहीं कर सकती थी कि डिक्री कानून में या तथ्यों पर गलत थी।

14. रामेश्वर दास गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1996) 5 एससीसी 728] के मामले में विश्वास रखा गया था। इस मामले में यह माना गया था कि निष्पादन न्यायालय डिक्री से परे यात्रा नहीं कर सकता है। यह माना गया कि निष्पादन न्यायालय को केवल डिक्री को निष्पादित करने का अधिकार क्षेत्र मिला है। यह माना गया था कि निष्पादन न्यायालय धन डिक्री पर ब्याज नहीं दे सकती थी, जब डिक्री में ब्याज नहीं दिया गया था।
15. अगला विश्वास सी.वी. राजेंद्रन बनाम एन.एम. मुहम्मद कुन्ही [(2002) 7 एससीसी 447] के मामले में विश्वास रखा गया था, जिसमें यह माना गया है कि एक ही कार्यवाही के विभिन्न चरणों में भी रेस जूडिकाटा के सिद्धांत लागू होते हैं। यह माना गया है कि यदि किसी मुद्दे पर पहले चरण में निर्णय लिया गया है, तो इसे बाद के चरण में फिर से उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।
16. उपरोक्त निर्णयों के आधार पर श्री दीवान ने प्रस्तुत किया कि डिक्री स्पष्ट होने के कारण, निष्पादन न्यायालय इस आधार पर डिक्री से परे नहीं जा सकती है कि डिक्री में कोई गलती थी। उन्होंने कहा कि समझौता विलेख के अनुसार अंतिम डिक्री क्या होनी चाहिए, इस पर दोनों पक्षों की ओर से दलीलें सुनने के बाद डिक्री पारित की गई थी। उन्होंने कहा कि रेडजूडिकाटा के सिद्धांत पर भी अपीलकर्ताओं को अब यह कहते हुए रोक दिया जाना चाहिए कि वे छमाही आधार पर ब्याज के हकदार हैं।

17. अंत में श्री दीवान ने पूर्वाग्रह सहित प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि प्रतिवादी अपीलकर्ताओं के सभी दावों के पूर्ण और अंतिम निपटान में अपीलकर्ताओं को 75 लाख रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए तैयार है।
18. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है। इस प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि निष्पादन न्यायालय डिक्री से परे नहीं जा सकता है। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि निष्पादन न्यायालय को उसकी अवधि के अनुसार डिक्री लेनी चाहिए। इसके अलावा, जैसा कि ग्रेटर कोचीन विकास प्राधिकरण मामले [(2002) 2 एससीसी 573] में निर्धारित किया गया है, जब कोई डिक्री किसी पंचाट/दस्तावेज के संदर्भ में होती है, तो उस दस्तावेज की शर्तों को देखा जाना चाहिए। इस मामले में डिक्री समझौता विलेख के संदर्भ में है। डिक्री में यह प्रावधान नहीं है कि समझौता विलेख या इसकी किसी भी शर्त में भिन्नता है। याद रखने योग्य है, कि डिक्री सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3 के तहत पारित की गई है। इस प्रावधान के तहत आम तौर पर न्यायालय समझौते के संदर्भ में डिक्री पारित करती है। बेशक, न्यायालय एक बदलाव कर सकती है। हालांकि, अगर न्यायालय बदलाव कर रही थी तो उसे यह रिकॉर्ड करना होगा कि वह बदलाव क्यों कर रही है और वह क्या बदलाव कर रही है। तब यह नहीं कहा जा सकता कि डिक्री समझौते के संदर्भ में थी। यदि न्यायालय समझौते के संदर्भ में डिक्री पारित नहीं कर रही थी तो डिक्री का यह शुरुआती भाग नहीं हो सकता था। अगला भाग प्रकृति में केवल वर्गीकृत है कि किस विकल्प का प्रयोग किया जाना था। यह डिक्री की मुख्य शर्तों को नियंत्रित या अलग नहीं करता है जो समझौते के संदर्भ में एक डिक्री है। समझौता विलेख के खंड 2 और 7 में यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता अर्धवार्षिक आधार पर ब्याज लेने के हकदार थे। हमें इस दलील में कोई दम नजर नहीं आता कि 'छमाही आराम' तभी लागू होता है जब ब्याज की दर अपीलकर्ताओं द्वारा तय की जानी हो। ये शब्द स्पष्ट रूप से दोनों विकल्पों पर लागू होते हैं। वर्गीकृत भाग में "अर्ध-वार्षिक आधार पर" शब्दों का उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि भाग केवल यह स्पष्ट कर रहा है कि ब्याज की गणना कैसे की जानी थी। इस प्रकार यह हिस्सा इस तथ्य से अलग नहीं होता है कि डिक्री समझौता विलेख के संदर्भ में है। केवल इसलिए कि कुछ अन्य मामूली परिवर्तन, जो अनजाने में परिवर्तन प्रतीत होते हैं, इस तथ्य से भी अलग नहीं होते हैं कि डिक्री समझौता विलेख के संदर्भ में है। हमें डिक्री में कोई अनिश्चितता भी नहीं मिलती है।
19. मामले के इस दृष्टिकोण में, हम आक्षेपित निर्णय को बनाए रखने में असमर्थ हैं। तदनुसार इसे निरस्त किया जाता है और निष्पादन न्यायालय के आदेश को बहाल किया जाता है।
20. तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है। वाद-खर्च के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

14. *ब्रेकवेल ऑटोमोटिव कंपोनेंट्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम पीआर सेल्वम अलगप्पन, (2017) 5 एससीसी 371* में प्रकाशित वाद में माननीय उच्चतम न्यायालय ने सीपीसी की धारा 47 के अन्तर्गत जांच के दायरे पर विचार और चर्चा की है और माना है कि धारा 47 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग सूक्ष्म है और एक बहुत ही संकीर्ण छिद्रान्वेषण में निहित है और एक निष्पादन अदालत डिक्री की निष्पादनीयता पर आपत्ति की अनुमति दे सकती है यदि यह पाया जाता है कि यह आरम्भ से ही शून्य है और अमान्य है। इस आधार के अलावा कि यह कानून के अन्तर्गत निष्पादन करने में सक्षम नहीं है, क्योंकि या तो इसे कानून के कुछ प्रावधानों की अज्ञानता में पारित किया गया था या कानून को इसके पारित होने के बाद एक डिक्री को अनिष्पादनीय बनाते हुए प्रख्यापित किया गया था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक सार नीचे प्रस्तुत किया गया है:

-

**"20.** अब यह स्पष्ट है कि एक निष्पादन न्यायालय न तो डिक्री के पीछे जा सकती है और न ही उस पर अपील में बैठ सकती है या उसके तहत पक्षकारों के अधिकारों को खतरे में डालने वाला कोई आदेश पारित कर सकती है। यह केवल उन सीमित मामलों में होता है जहां डिक्री एक न्यायालय द्वारा अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र की कमी होती है या एक शून्यता होती है कि इसे अयोग्य घोषित किया जाता है और इस प्रकार निष्पादन योग्य नहीं होता है। एक गलत डिक्री को एक ऐसे आदेश के साथ बराबर नहीं किया जा सकता है जो शून्य है। डिक्री को अनिष्पादन योग्य बनाने के लिए कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया है।

**21.** जैसा यह है कि संहिता की धारा 47 एक निष्पादन न्यायालय पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच उठने वाले और डिक्री के निष्पादन, निर्वहन या संतुष्टि से संबंधित प्रश्नों का अनिवार्य निर्धारण करती है और इसके अलावा किसी भी निर्णय पर विचार नहीं करती है। न्यायालय का आदेश प्रकृति में पवित्र होने के कारण, उसके निष्पादन को केवल पूछने पर और असमर्थनीय और कथित आधारों पर नहीं रोका जाना चाहिए, जिसका इसकी वैधता या निष्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

**22.** इस आशय की पूर्व न्यायिक निर्णय कि संहिता की धारा 47 के अन्तर्गत जांच का दायरा क्षेत्राधिकार की दुर्बलता या शून्यता के

आधार पर इसकी निष्पादन क्षमता पर आपतियों तक सीमित है। इस न्यायालय ने वासुदेव धनजीभाई मोदी बनाम राजाभाई अब्दुल रहमान [(1970) 1 एससीसी 670 : एआईआर 1970 एससी 1475: (1971) 1 एससीआर 66] मामले में संक्षेप में कहा कि संहिता की धारा 47 के अन्तर्गत केवल एक डिक्री जो अमान्य है, वही एक आपति का विषय हो सकती है, न कि कानून में या तथ्यों पर त्रुटिपूर्ण डिक्री। इस निर्णय से निम्नलिखित निष्कर्ष उपयुक्त लगता है: (एससीसी पीपी 672-73, पैरा 6-7)

"एक डिक्री निष्पादित करने वाली न्यायालय डिक्री के पीछे नहीं जा सकती है: पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच इसे डिक्री को उसकी अवधि के अनुसार लेना चाहिए, और किसी भी आपति पर विचार नहीं कर सकता है कि डिक्री कानून में या तथ्यों पर गलत थी। जब तक इसे अपील या संशोधन में उचित कार्यवाही द्वारा रद्द नहीं किया जाता है, तब तक एक डिक्री भले ही गलत हो, पक्षकारों के बीच बाध्यकारी है।

7. जब कोई एक डिक्री जो एक अमान्य है, उदाहरण के लिए, जहां इसे किसी ऐसे व्यक्ति के कानूनी प्रतिनिधि को रिकॉर्ड पर लाए बिना पारित किया जाता है, जो डिक्री की तारीख पर मर गया था, या प्रमाण पत्र के बिना एक शासक राजकुमार के खिलाफ, निष्पादित करने की मांग की जाती है, तो उस संबंध में एक आपति निष्पादन के लिए कार्यवाही में उठाई जा सकती है। फिर, जब डिक्री एक ऐसे न्यायालय द्वारा पारित की जाती है, जिसके पास इसे पारित करने का कोई अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो इसकी वैधता के बारे में आपति निष्पादन कार्यवाही में उठाई जा सकती है यदि आपति रिकॉर्ड के चेहरे पर दिखाई देती है: तो इसकी वैधता के बारे में आपति निष्पादन कार्यवाही में उठाई जा सकती है जहां डिक्री पारित करने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बारे में आपति रिकॉर्ड के चेहरे पर दिखाई नहीं देती है और परीक्षण में उठाए गए और तय किए गए सवालों में जांच की आवश्यकता होती है या जो उठाया जा सकता था, लेकिन नहीं उठाया गया था, निष्पादन न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र की अनुपस्थिति के आधार पर भी डिक्री की वैधता के बारे में आपति पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

**23.** यद्यपि इस न्यायालय की इसी तरह की घोषणाओं में इस विचार की गूंज सुनाई देती रही है, लेकिन धुरंधर प्रसाद सिंह बनाम जय प्रकाश विश्वविद्यालय [धुरंधर प्रसाद सिंह बनाम जय प्रकाश विश्वविद्यालय, (2001) 6 एससीसी 534: एआईआर 2001 एससी 2552] मामले में, संहिता की धारा 47 के दायरे पर विचार करते हुए, यह व्यवस्था दी गई थी कि इसके तहत न्यायालय की शक्तियां अपील/पुनरीक्षण/पुनर्विलोकन की तुलना में काफी अलग और बहुत

सीमित हैं। यह दोहराया गया कि संहिता की धारा 47 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग सूक्ष्म है और एक बहुत ही संकीर्ण छिद्रान्वेषण में निहित है और एक निष्पादन न्यायालय डिक्री की निष्पादनीयता पर आपत्ति की अनुमति दे सकती है यदि यह पाया जाता है कि यह आरम्भ से ही शून्य है और अमान्य है, इस आधार के अलावा कि यह कानून के तहत निष्पादन में सक्षम नहीं है, या तो इसलिए कि इसे कानून के ऐसे प्रावधान की अज्ञानता में पारित किया गया था या कानून को इसके पारित होने के बाद एक डिक्री को निष्पादन योग्य नहीं बनाने के लिए प्रख्यापित किया गया था। उपरोक्त घटनाओं में से कोई भी घटना जैसा कि कानून में मान्यता प्राप्त है कि डिक्री को निष्पादन योग्य नहीं बनाया जा सकता है, इस मामले में मौजूद नहीं है। स्पष्ट कारणों से, हम एक ही दृष्टिकोण के पक्ष में निर्णयों को गुणा करके इस निर्णय पर बोझ नहीं डालना चाहते हैं।

15. चूंकि ब्याज से संबंधित मुद्दे पर विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया था और एक निष्कर्ष लौटाया गया था कि वादी एक निश्चित दर पर ब्याज का हकदार है और ऐसा निष्कर्ष अंतिम हो गया है, इसलिए, निष्पादन न्यायालय का इस सवाल पर विचार नहीं करना उचित था कि क्या दिया गया ब्याज अत्यधिक है।
16. *आदित्य मास कम्युनिकेशंस (पी) लिमिटेड बनाम ए.पी.एस.आर.टी.सी., (2003) 11 एससीसी 17* में प्रकाशित वाद में माननीय उच्चतम न्यायालय एक ऐसे वाद की सुनवाई कर रहा था जिसमें प्रतिवादी-निगम द्वारा अग्रिम राशि को अनुचित रूप से अपने पास रखा गया था और ठेकेदार को अपना पैसा वापस पाने के लिए मुकदमेबाजी की एक श्रृंखला में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया गया था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा, जिसके अन्तर्गत ठेकेदार को @ 12% प्रति वर्ष ब्याज का भुगतान

करने का आदेश दिया गया था और कहा कि यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि जिस पक्ष का पैसा दूसरे पक्ष द्वारा गलत तरीके से रखा गया है, उसे पर्याप्त मुआवजा दिया जाए। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 8 और 9 को नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

**"8.** ऊपर दिए गए तथ्यों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रतिवादी ने कानून के अधिकार के बिना अपीलकर्ता से संबंधित धन को बनाए रखा है और अपीलकर्ता को मुकदमों की एक श्रृंखला के लिए प्रेरित किया है, इसलिए, यह तथ्य स्वयं ब्याज दर में कटौती के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष किए गए प्रतिवादी के अनुरोध को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए था। किसी दिए गए मामले में न्यायालय द्वारा दी जाने वाली ब्याज की मात्रा मामले के तथ्यों द्वारा नियंत्रित होती है, न कि किसी पूर्व न्यायिक निर्णय कानून द्वारा, जब तक कि निश्चित रूप से, एक कानून द्वारा सीमित न हो। यदि कोई न्यायालय दिए गए तथ्यों पर इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि किसी पक्षकार को अपने स्वयं के धन के उपयोग से गलत तरीके से वंचित किया गया है, तो यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि उक्त पक्ष को उचित मुआवजा दिया जाए। इस मामले में, हमारी राय है कि प्रतिवादी ने अपीलकर्ता को धन के सही उपयोग से वंचित कर दिया है। इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया कम से कम ब्याज सबसे उचित था। हम यह भी देखते हैं कि उच्च न्यायालय ने सोविंतोर्ग (इंडिया) लिमिटेड बनाम भारतीय स्टेट बैंक [(1999) 6 एससीसी 406] और गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम भारत संघ [(2000) 6 एससीसी 113] के मामले में इस न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख करने के अलावा कोई कारण नहीं दिया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस मामले के तथ्य उन निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत के आवेदन को सही नहीं ठहराते हैं।

**9.** इसलिए, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को इस हद तक रद्द करते हैं कि इसने विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए ब्याज को 12% से घटाकर 9% कर दिया है और विचारण न्यायालय के निर्देशानुसार 20 लाख रुपये की अग्रिम राशि जमा पर अपीलकर्ता को प्रतिवादी द्वारा भुगतान किए जाने वाले ब्याज को 12% तक बहाल कर दिया है। अपील की अनुमति 15,000 रुपये के खर्च के साथ दी जाती है।

17. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तब प्रस्तुत किया कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 15

(2) के अन्तर्गत निहित प्रावधान के मद्देनजर, निष्पादन आवेदन सिविल कोर्ट के समक्ष सुनवाई योग्य नहीं था और इसे वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष दायर किया जाना चाहिए था। हालांकि, इस याचिका को याचिकाकर्ता द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष अपनी आपत्ति में नहीं उठाया गया था और न ही इसे रिट याचिका में उठाया गया है।

18. एक डिक्री या तो उस न्यायालय द्वारा निष्पादित की जा सकती है जिसने ऐसी डिक्री पारित की थी या उस न्यायालय द्वारा जिसके पास इसे निष्पादन के लिए भेजा गया था। डिक्री पारित करने वाला न्यायालय, डिक्री धारक के आवेदन पर इसे सक्षम क्षेत्राधिकार के किसी अन्य न्यायालय में निष्पादन के लिए भेज सकता है, यदि डिक्री पारित करने वाला न्यायालय किसी कारण से विचार करता है, जिसे लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा कि डिक्री को ऐसे अन्य न्यायालय द्वारा निष्पादित किया जाना चाहिए। धारा 39 की उप-धारा (3) में प्रावधान है कि, धारा 39 के प्रयोजन के लिए, न्यायालय को सक्षम क्षेत्राधिकार का न्यायालय माना जाएगा, यदि डिक्री के हस्तांतरण के लिए आवेदन करते समय ऐसे न्यायालय के पास मुकदमे का विचारण करने का अधिकार होगा, जिसमें ऐसी डिक्री पारित की गई थी।

19. माना जाता है कि डिक्री सिविल जज (सीनियर डिवीजन), देहरादून की न्यायालय द्वारा पारित की गई थी, इसलिए, सीपीसी की धारा 38 के आधार पर, सिविल जज (सीनियर डिवीजन), देहरादून की न्यायालय इसे निष्पादित करने के लिए सक्षम है। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम,

2015 का अध्याय V एक निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद से संबंधित लंबित वादों और आवेदनों को सिविल न्यायालय से वाणिज्यिक न्यायालय में स्थानांतरित करने से संबंधित है और उप-धारा (2) के परंतुक में आगे प्रावधान है कि कोई भी वाद या आवेदन, जहां वाणिज्यिक न्यायालय के गठन से पहले न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय सुरक्षित रखा गया है, को उपधारा (2) के तहत स्थानांतरित नहीं किया जाएगा। हालांकि, धारा 15 की उप-धारा (5) में आगे प्रावधान है कि यदि किसी निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद से संबंधित मुकदमा/आवेदन उप-धारा (2) में निर्दिष्ट तरीके से स्थानांतरित नहीं किया जाता है, तो उच्च न्यायालय का वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग, वाद के किसी भी पक्ष के आवेदन पर, उसे वाणिज्यिक न्यायालय में परीक्षण या निपटान के लिए स्थानांतरित कर सकता है।

20. इस प्रकार, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 15 (5) के मददेनजर, याचिकाकर्ता के लिए निष्पादन वाद को सिविल न्यायालय से वाणिज्यिक न्यायालय में स्थानांतरित करने के लिए आवेदन करना खुला था, हालांकि, उन्होंने ऐसा आवेदन नहीं दिया। धारा 47 सी.पी.सी. के अन्तर्गत दायर आपत्ति में भी, याचिकाकर्ता ने निष्पादन वाद पर विचार करने के लिए सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का सवाल नहीं उठाया।

21. अन्यथा भी, सिविल न्यायालय द्वारा दिनांक 20-08-2001 को डिक्री पारित की गई थी, जिसे देहरादून में वाणिज्यिक न्यायालय की स्थापना से पहले निष्पादित किया गया था। हालांकि, वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के



अध्याय V में लंबित वादों और आवेदनों के हस्तांतरण का प्रावधान है, हालांकि, यह इंगित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि डिक्री पारित करने वाले सिविल न्यायालय को डिक्री निष्पादित करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र से वंचित किया गया है। धारा 15 की उपधारा (5) में कार्यवाही में पक्षकार के आवेदन पर उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग द्वारा वाद या आवेदन को सिविल न्यायालय से वाणिज्यिक न्यायालय में स्थानांतरित करने का प्रावधान है, हालांकि, उक्त प्रावधान की सरल भाषा इंगित करती है कि उच्च न्यायालय उचित मामले में वाद/आवेदन को वाणिज्यिक न्यायालय में स्थानांतरित करने से इनकार कर सकता है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि डिक्री पारित करने वाले सिविल न्यायालय ने वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर अधिकार क्षेत्र खो दिया। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम की धारा 11 वाणिज्यिक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के सहवर्ती बनाती है।

22. इस प्रकार, मेरी विनम्र राय में, याचिकाकर्ता की ओर से उठाए गए तर्क कि सिविल जज (सीनियर डिवीजन), देहरादून की न्यायालय के पास प्रतिवादी सं० 1 द्वारा दायर निष्पादन आवेदन पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

23. इस मामले का एक और पहलू भी है। वाद वर्ष 1988 में दायर किया गया था, जिसे विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा 20.08.2001 को डिक्री किया गया था। उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई डिक्री को अभी तक निष्पादित नहीं किया गया है। निष्पादन न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्ति को विद्वान षष्ठम अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), देहरादून द्वारा दिनांक 18.04.2022 के आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया गया था, जिसकी पुष्टि सप्तम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, देहरादून द्वारा दिनांक 02.09.2022 के फैसले के माध्यम की गयी थी। याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस न्यायालय के अधीक्षण अधिकार क्षेत्र को लागू करके अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और आदेशों को चुनौती दी है।

24. माननीय उच्चतम न्यायालय ने बार-बार यह कहा है कि अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से किया जाना चाहिए जब न्याय का स्पष्ट उल्लंघन हुआ हो और इस तरह की शक्ति का प्रयोग तथ्य या कानून की गलती को सुधारने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में एक निर्णय दिया है जिसे *गारमेंट क्राफ्ट बनाम प्रकाश चंद गोयल, (2022)* 4 एससीसी 181 में प्रकाशित वाद में अवधारित किया जिसे निम्नांकित किया गया है: -

**"15.** पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमारा स्पष्ट रूप से विचार है कि लागू आदेश [प्रकाश चंद गोयल बनाम गारमेंट क्राफ्ट, 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 11943] कानून के विपरीत है और इसे कई कारणों से बनाए नहीं रखा जा सकता है, लेकिन मुख्य रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा उपयोग किए गए सीमित अधिकार क्षेत्र से विचलन के लिए। अधीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय उन सबूतों या तथ्यों को पुनः समझने, पुनर्विचार करने के लिए प्रथम अपील की न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है जिन पर चुनौती के अन्तर्गत निर्धारण आधारित है। अधीक्षण क्षेत्राधिकार तथ्य की हर त्रुटि या यहां तक कि एक कानूनी दोष को ठीक करने के लिए नहीं है जब अंतिम निष्कर्ष उचित है या समर्थित किया जा सकता है। उच्च न्यायालय को तथ्यों और निष्कर्ष पर अपने स्वयं के निर्णय को अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण के लिए प्रतिस्थापित नहीं करना है। [सेलिना कोएल्हो परेरा बनाम उल्हास महाबलेश्वर खोलकर, (2010) 1 एससीसी 217: (2010) 1 एससीसी (सीआईवी) 69] जिस क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाता है, वह सुधारात्मक क्षेत्राधिकार की प्रकृति में कर्तव्य की गंभीर उपेक्षा या घोर दुरुपयोग, कानून या न्याय के मौलिक सिद्धांतों के उल्लंघन को सही करने के लिए है। अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत शक्ति का उपयोग उचित मामलों में संयम से किया जाता है, जैसे कि जब औचित्य साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है, या निष्कर्ष इतना विकृत है कि कोई भी उचित व्यक्ति संभवतः ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है जिस पर न्यायालय या अधिकरण आया है। यह स्वयंसिद्ध है कि इस तरह की विवेकाधीन राहत का उपयोग यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए कि न्याय का कोई उल्लंघन न हो।

**16.** अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत अधिकार क्षेत्र के दायरे की व्याख्या करते हुए, इस न्यायालय ने एस्ट्राला रबर बनाम दास एस्टेट (पी) लिमिटेड [एस्ट्राला रबर बनाम दास एस्टेट (पी) लिमिटेड, (2001) 8 एससीसी 97] में कहा है: (एससीसी पेज 101-102, पैरा 6)

"6. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत एक उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के दायरे और दायरे की जांच और विस्तार इस न्यायालय के कई निर्णयों में किया गया है। इस अनुच्छेद के तहत शक्ति के प्रयोग में उच्च न्यायालय का कर्तव्य शामिल है कि वह अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों को अपने अधिकार की सीमा के भीतर रखे और यह देखे कि वे कानूनी तरीके से अपेक्षित या अपेक्षित कर्तव्य का पालन करें। उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर किए गए सभी प्रकार की कठिनाई या गलत निर्णयों को ठीक करने का कोई

असीमित विशेषाधिकार नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग करना और न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के आदेशों में हस्तक्षेप करना कर्तव्य की गंभीर उपेक्षा और कानून या न्याय के मौलिक सिद्धांतों के घोर उल्लंघन के मामलों तक ही सीमित है, जहां यदि उच्च न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करता है, तो एक गंभीर अन्याय को ठीक नहीं किया जाता है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि इस अनुच्छेद के तहत कार्य करते हुए उच्च न्यायालय एक अपीलीय न्यायालय के रूप में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है या किसी त्रुटि को ठीक करने के लिए अधीनस्थ न्यायालय के स्थान पर अपने स्वयं के फैसले को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है, जो स्वयं अभिलेख देखने से स्पष्ट नहीं है। उच्च न्यायालय किसी अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण के तथ्यों के निष्कर्षों को निरस्त या अनदेखा कर सकता है, अगर सही ठहराने के लिए कोई सबूत नहीं है या निष्कर्ष इतना विकृत है, कि कोई भी उचित व्यक्ति संभवतः ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है, जिस पर न्यायालय या न्यायाधिकरण आया है।

25. जैसा कि उपर्युक्त तथ्यों और कारणों के लिए चर्चा की गई है, इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत अधीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है।
26. तदनुसार, रिट याचिका विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं।

(न्यायमूर्ति मनोज कुमार तिवारी)